

Chapter चौहत्तर

राजसूय यज्ञ में शिशुपाल का उद्धार

इस अध्याय में बतलाया गया है कि भगवान् कृष्ण ने किस तरह राजसूय यज्ञ के अवसर पर अग्रपूजा का सम्मान प्राप्त किया और शिशुपाल का किस तरह वध किया।

कृष्ण की स्तुति करने के बाद राजा युधिष्ठिर ने भरद्वाज, गौतम तथा वसिष्ठ जैसे योग्य ब्राह्मणों को राजसूय यज्ञ के पुरोहित के कार्य के लिए चुना। फिर चारों वर्णों के अनेक सम्मानित अतिथि यज्ञ देखने के लिए आये।

जब यज्ञ चलने लगा तो “अग्रपूजा” का अनुष्ठान सम्पन्न किया जाना था, अतः सभासदों को यह निश्चय करने के लिए पूछा गया कि यह सम्मान किसे मिले। सहदेव ने उठकर कहा, “निस्सन्देह भगवान् श्रीकृष्ण ही सर्वाधिक पूज्य पुरुष हैं, क्योंकि वैदिक यज्ञ द्वारा पूजित समस्त अर्चाविग्रह उन्हीं

में समाये हुए हैं। हृदय में परमात्मा के रूप में विराजमान वे ब्रह्माण्ड के हर व्यक्ति को उसके विशेष कार्य में लगाने वाले हैं और एकमात्र उन्हीं की कृपा से मनुष्य विविध पुण्यकर्म कर सकते हैं तथा उनका फल भोगते हैं। जो व्यक्ति उन्हें पूजता है, वह सारे जीवों को पूजता है। निश्चय ही भगवान् कृष्ण की अग्रपूजा होनी चाहिए।”

सभा का प्रायः हर व्यक्ति सहदेव के प्रस्ताव से सहमत था और सबों ने उच्च स्वर से उन्हें बधाई दी। इस तरह राजा युधिष्ठिर ने प्रसन्नतापूर्वक भगवान् कृष्ण की पूजा की। उन्होंने उनके चरण धोये और चरणोदक को अपने सिर पर छिड़का। उनकी पत्नियों, भाइयों, मंत्रियों तथा सम्बन्धियों ने भी वह चरणोदक अपने अपने सिरों पर छिड़का। फिर सबों ने जय-जयकार की और भगवान् कृष्ण को शीश झुकाया तथा ऊपर से फूलों की वर्षा हुई।

किन्तु श्रीकृष्ण की यह पूजा तथा यशोगान शिशुपाल से सहन न हो पाया। वह अपने आसन से उठ कर खड़ा हो गया और कृष्ण को अग्रपूजा के लिए चुनने के हेतु अपने बुद्धिमान अग्रजों को बुरी तरह से फटकारने लगा। उसने कहा, “यह कृष्ण वैदिक वर्णाश्रम धर्म तथा सम्मान्य परिवारों के समाज से बाहर है। यह न तो किसी धर्म का पालन करता है, न इसमें सद्गुण ही हैं।”

जब शिशुपाल इस प्रकार से भगवान् कृष्ण की अवमानना किये जा रहा था, तो वे मौन रहे। किन्तु सभा के अनेक सदस्य अपने कान मूँदकर सभाभवन से बाहर चले गये जबकि पाण्डवों ने अपने हथियार उठाकर शिशुपाल को मार डालने की तैयारी कर ली। कृष्ण ने उन्हें ऐसा करने से रोका, किन्तु उन्होंने स्वयं ही अपने सुदर्शन चक्र से उसका सिर काट लिया। उस समय शिशुपाल के मृत शरीर से एक तेज पुंज निकला और वह भगवान् कृष्ण के दिव्य शरीर में प्रविष्ट हो गया। तीन जन्मों तक भगवान् का शत्रु बन कर जीवित रहने के बाद अब जाकर शिशुपाल को निरन्तर भगवान् कृष्ण का ध्यान करते रहने से सायुज्य मुक्ति प्राप्त हुई।

तत्पश्चात् राजा युधिष्ठिर ने सभा के पूज्य अतिथियों तथा पुरोहितों को प्रचुर भेंटें दीं और अन्त में प्रायश्चित्त होम किया, जिससे यज्ञ के समय हुई त्रुटियों का शमन हो सके। अब जबकि युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ पूरा हो गया था, तो कृष्ण ने राजा से विदा ली और अपनी पत्नियों तथा मंत्रियों को साथ लेकर द्वारका के लिए प्रस्थान किया।

दुर्योधन से राजा युधिष्ठिर की सम्पन्नता का यह विराट प्रदर्शन सहन न हो सका, किन्तु उसके अतिरिक्त हर व्यक्ति ने राजसूय यज्ञ की और समस्त यज्ञों के स्वामी श्रीकृष्ण की महिमाओं की प्रसन्नतापूर्वक बड़ाई की।

श्रीशुक उवाच

एवं युधिष्ठिरो राजा जरासन्धवधं विभोः ।
कृष्णस्य चानुभावं तं श्रुत्वा प्रीतस्तमब्रवीत् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; युधिष्ठिरः—युधिष्ठिर; राजा—राजा; जरासन्ध-वधम्—जरासन्ध का वध; विभोः—सर्वशक्तिमान का; कृष्णस्य—कृष्ण का; च—तथा; अनुभावम्—बल (का प्रदर्शन); तम्—उसको; श्रुत्वा—सुनकर; प्रीतः—प्रसन्न; तम्—उन्से; अब्रवीत्—बोले।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस प्रकार जरासन्ध वध तथा सर्वशक्तिमान कृष्ण की अद्भुत शक्ति के विषय में भी सुनकर राजा युधिष्ठिर ने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक भगवान् से इस प्रकार कहा।

श्रीयुधिष्ठिर उवाच

ये स्युत्रैलोक्यगुरवः सर्वे लोका महेश्वराः ।
वहन्ति दुर्लभं लब्ध्वा शिरसैवानुशासनम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-युधिष्ठिरः उवाच—श्री युधिष्ठिर ने कहा; ये—जो; स्युः—हैं; त्रै-लोक्य—तीनों लोकों के; गुरवः—गुरु; सर्वे—सारे; लोकाः—लोकों (के निवासी); महा-ईश्वराः—तथा महान् नियन्ता देवता; वहन्ति—ले जाते हैं; दुर्लभम्—विरले ही प्राप्य; लब्ध्वा—प्राप्त करके; शिरसा—सिरों के बल; एव—निस्सन्देह; अनुशासनम्—(आपका) आदेश।

श्री युधिष्ठिर ने कहा : तीनों लोकों के प्रतिष्ठित गुरु तथा विभिन्न लोकों के निवासी एवं शासक आपके आदेश को, जो विरले ही किसी को मिलता है, सिर-आँखों पर लेते हैं।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने महाराज युधिष्ठिर के कथन को निम्नवत् उद्धृत किया है, “हे कृष्ण! हे सच्चिदानन्द स्वरूप! इस भौतिक जगत के कार्य-व्यापार के सभी पूज्य संचालक जिनमें ब्रह्मा, शिव तथा इन्द्र सम्मिलित हैं, आपका आदेश प्राप्त करने और उसको पूरा करने के लिए सदैव उत्सुक रहते हैं और जब ऐसा आदेश प्राप्त करने का उन्हें सौभाग्य प्राप्त होता है, तो वे उन आदेशों को तुरन्त ग्रहण करके उन्हें अपने हृदयों में धारण कर लेते हैं।”

स भवानरविन्दाक्षो दीनानामीशमानिनाम् ।
धत्तेऽनुशासनं भूमस्तदत्यन्तविडम्बनम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

सः—वही; भवान्—आप; अरविन्द-अक्षः—कमल-नेत्र भगवान्; दीनानाम्—उनके, जो कि दुखी हैं; ईश—शासक;
मानिनाम्—मानने वालों के; धत्ते—अपने ऊपर लेते हैं; अनुशासनम्—आदेश; भूमन्—हे सर्वव्यापी; तत्—वह; अत्यन्त—
बहुत बड़ा; विडम्बनम्—आडम्बर, धोखा ।

वही कमल-नेत्र भगवान् आप उन दीन मूर्खों के आदेशों को स्वीकार करते हैं, जो अपने आपको शासक मान बैठते हैं, जबकि हे सर्वव्यापी, यह आपके पक्ष में महान् आडम्बर है ।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद लिखते हैं “[युधिष्ठिर ने कहा] : हे कृष्ण, आप अनन्त हैं और यद्यपि हम अपने आपको कभी कभी संसार का राजा तथा शासक मानते हैं और अपने तुच्छ पदों पर इतराने लगते हैं, किन्तु हमारे हृदय अत्यन्त निर्धन हैं । वस्तुतः हम आपके द्वारा दण्डित किये जाने के योग्य हैं । किन्तु आश्चर्य इस बात का है कि आप हमें दण्डित करने की बजाय अत्यन्त कृपापूर्वक हमारे आदेशों को मान कर उनका समुचित ढंग से निर्वहन करते हैं । अन्य लोगों को अत्यन्त आश्चर्य होता है कि आप एक सामान्य मनुष्य की भूमिका निभा सकते हैं, किन्तु हम समझते हैं कि आप ये सारे कार्य एक नट (नाटक के कलाकार) की भाँति करते हैं ।”

न ह्येकस्याद्वितीयस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ।
कर्मभिर्वर्धते तेजो ह्यसते च यथा रवेः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; हि—निस्सन्देह; एकस्य—एक का; अद्वितीयस्य—अद्वितीय का; ब्रह्मणः—ब्रह्म; परम-आत्मनः—परमात्मा;
कर्मभिः—कर्मों से; वर्धते—बढ़ता है; तेजः—बल, तेज; ह्यसते—घटता है; च—तथा; यथा—जिस तरह; रवेः—सूर्य का ।

किन्तु वस्तुतः परम सत्य, परमात्मा, अद्वितीय आदि पुरुष का तेज उनके कर्मों से न तो किसी प्रकार बढ़ता है, न घटता है, जिस प्रकार सूर्य का तेज उसकी गति से घटता-बढ़ता नहीं है ।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद अपनी पुस्तक श्रीकृष्ण में लिखते हैं “[राजा युधिष्ठिर ने कहा] आपकी वास्तविक स्थिति सदैव उच्चस्थ है, ठीक सूर्य के समान, जो अपने उदय और अस्त होते समय एक ही तापमान पर बना रहता है । यद्यपि उदय होते और अस्तमान सूर्य के बीच तापमान में हम अन्तर अनुभव करते हैं तथापि सूर्य का तापमान कभी बदलता नहीं । आप सदैव दिव्यरूप से सम अवस्था में रहते हैं, अतः आप भौतिक कार्यकलापों की किसी भी परिस्थिति से प्रसन्न अथवा बेचैन नहीं होते । आप

परब्रह्म, भगवान् हैं और आपके लिए कोई सपिक्ता नहीं होती हैं।”

श्रील श्रीधर स्वामी भी वैदिक मंत्रों में से ऐसा ही कथन उद्धृत करते हैं *न कर्मणा वर्धते नो कनीयान्* (शतपथ ब्राह्मण १४.७.२.२८, तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.१२.९.७ तथा बृहदारण्यक उपनिषद् ४.४.२३)—वे अपने कर्मों से न तो बढ़ाते हैं, न ही घटाते हैं। जैसाकि यहाँ पर राजा युधिष्ठिर ने बतलाया है, भगवान् अद्वय हैं। उनकी समानता करने वाला कोई अन्य जीव नहीं है और यह तो उनकी अहैतुकी कृपा ही है कि वे महाराज युधिष्ठिर जैसे अपने शुद्ध भक्त के आदेशों को मानने के लिए तैयार हो जाते हैं। जब वे अपने शरणागत भक्तों पर अपनी अहैतुकी कृपा प्रदर्शित करते हैं, तो निश्चित ही इससे भगवान् के पद में कोई कमी नहीं आती।

न वै तेऽजित भक्तानां ममाहमिति माधव ।
त्वं तवेति च नानाधीः पशूनामिव वैकृती ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; वै—निस्सन्देह; ते—तुम्हारा; अजित—हे अजेय; भक्तानाम्—भक्तों के; मम अहम् इति—“मेरा तथा मैं”; माधव—हे कृष्ण; त्वम् तव इति—“तुम और तुम्हारा”; च—तथा; नाना—अन्तर्गत की; धीः—प्रवृत्ति; पशूनाम्—पशुओं की; इव—मानो; वैकृती—विकृत।

हे अजित माधव, आपके भक्त तक “मैं तथा मेरा” और “तुम तथा तुम्हारा” में कोई अन्तर नहीं मानते, क्योंकि यह तो पशुओं की विकृत प्रवृत्ति है।

तात्पर्य : एक सामान्य व्यक्ति सोचता है “मैं इतना सुन्दर, बुद्धिमान तथा धनी हूँ कि सारे लोग मेरी सेवा करें और वही करें जो मैं चाहूँ। मैं किसी दूसरे की आज्ञा क्यों मानूँ?” यह दर्पपूर्ण अलगाववादी प्रवृत्ति पशुओं में भी पाई जाती है, जो श्रेष्ठता के लिए एक-दूसरे से लड़ते रहते हैं। किन्तु उच्चस्थ भक्त के मन में ऐसी प्रवृत्ति का स्पष्टतया अभाव रहता है और सर्वज्ञ तथा दिव्य भगवान् में यह प्रवृत्ति निश्चित रूप से अनुपस्थित रहती है।

श्रीशुक उवाच

इत्युक्त्वा यज्ञिये काले वव्रे युक्तान्स ऋत्विजः ।
कृष्णानुमोदितः पार्थो ब्राह्मणान्ब्रह्मवादिनः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; उक्त्वा—कह कर; यज्ञिये—यज्ञ के अनुकूल; काले—समय पर; वने—चुना; युक्तान्—उपयुक्त; सः—उसने; ऋत्विजः—यज्ञ कराने वाले पुरोहित; कृष्ण—कृष्ण द्वारा; अनुमोदितः—स्वीकृत; पार्थः—पृथा-पुत्र (युधिष्ठिर) ने; ब्राह्मणान्—ब्राह्मणों को; ब्रह्म—वेदों के; वादिनः—कुशल विद्वान्।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : यह कह कर राजा युधिष्ठिर ने तब तक प्रतीक्षा की जब तक यज्ञ का उपयुक्त समय निकट नहीं आ गया। तब उन्होंने भगवान् कृष्ण की अनुमति से यज्ञ कराने के लिए उन उपयुक्त पुरोहितों का चुनाव किया, जो कुशल विद्वान् थे।

तात्पर्य : भागवत के महान् टीकाकार श्रीधर स्वामी की व्याख्या है कि यहाँ पर उल्लिखित यज्ञ का उपयुक्त समय वसन्त था।

द्वैपायनो भरद्वाजः सुमन्तुर्गोतमोऽसितः ।

वसिष्ठश्च्यवनः कण्वो मैत्रेयः कवषस्त्रितः ॥ ७ ॥

विश्वामित्रो वामदेवः सुमतिर्जैमिनिः क्रतुः ।

पैलः पराशरो गर्गो वैशम्पायन एव च ॥ ८ ॥

अथर्वा कश्यपो धौम्यो रामो भार्गव आसुरिः ।

वीतिहोत्रो मधुच्छन्दा वीरसेनोऽकृतव्रणः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

द्वैपायनः भरद्वाजः—द्वैपायन (व्यासदेव) तथा भरद्वाज; सुमन्तुः गोतमः असितः—सुमन्तु, गोतम तथा असित; वसिष्ठः च्यवनः कण्वः—वसिष्ठ, च्यवन तथा कण्व; मैत्रेयः कवषः त्रितः—मैत्रेय, कवष तथा त्रित; विश्वामित्रः वामदेवः—विश्वामित्र तथा वामदेव; सुमतिः जैमिनिः क्रतुः—सुमति, जैमिनि तथा क्रतु; पैलः पराशरः गर्गः—पैल, पराशर तथा गर्ग; वैशम्पायनः—वैशम्पायन; एव च—भी; अथर्वा कश्यपः धौम्यः—अथर्वा, कश्यप तथा धौम्य; रामः भार्गवः—भृगुवंशी परशुराम; आसुरिः—आसुरि; वीतिहोत्रः मधुच्छन्दाः—वीतिहोत्र तथा मधुच्छन्दा; वीरसेनः अकृतव्रणः—वीरसेन तथा अकृतव्रणः।

उन्होंने कृष्णद्वैपायन, भरद्वाज, सुमन्त, गोतम तथा असित के साथ ही वसिष्ठ, च्यवन, कण्व, मैत्रेय, कवष तथा त्रित को चुना। उन्होंने विश्वामित्र, वामदेव, सुमति, जैमिनि, क्रतु, पैल तथा पराशर एवं गर्ग, वैशम्पायन, अथर्वा, कश्यप, धौम्य, भृगुवंशी परशुराम, आसुरि, वीतिहोत्र, मधुच्छन्दा, वीरसेन तथा अकृतव्रण को भी चुना।

तात्पर्य : राजा युधिष्ठिर ने इन उच्च ब्राह्मणों को पुरोहितों, सलाहकारों इत्यादि विविध पदों पर कार्य करने के लिए आमंत्रित किया।

उपहृतास्तथा चान्ये द्रोणभीष्मकृपादयः ।

धृतराष्ट्रः सहसुतो विदुरश्च महामतिः ॥ १० ॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा यज्ञदिदक्षवः ।

तत्रेयुः सर्वराजानो राज्ञां प्रकृतयो नृप ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

उपहृताः—आमंत्रित; तथा—भी; च—और; अन्ये—अन्य; द्रोण-भीष्म-कृप-आदयः—द्रोण, भीष्म, कृप इत्यादि; धृतराष्ट्रः—
धृतराष्ट्र; सह-सुतः—पुत्रों सहित; विदुरः—विदुर; च—तथा; महा-मतिः—अत्यन्त बुद्धिमान; ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः
शूद्राः—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रगण; यज्ञ—यज्ञ; दिहक्षवः—देखने के लिए उत्सुक; तत्र—वहाँ; ईयुः—आये; सर्व—
सारे; राजानः—राजा; राज्ञाम्—राजाओं के; प्रकृतयः—दल-बल सहित; नृप—हे राजन्।

हे राजन्, जिन अन्य लोगों को आमंत्रित किया गया था उनमें द्रोण, भीष्म, कृप, पुत्रों सहित
धृतराष्ट्र, महामति विदुर तथा यज्ञ देखने के लिए उत्सुक अन्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र
सम्मिलित थे। हाँ, सारे राजा दल-बल सहित वहाँ पधारे थे।

ततस्ते देवयजनं ब्राह्मणाः स्वर्णलाङ्गलैः ।

कृष्ट्वा तत्र यथाम्नायं दीक्षयां चक्रिरे नृपम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; ते—उन; देव-यजनम्—देवताओं के पूजा-स्थल को; ब्राह्मणाः—ब्राह्मणों ने; स्वर्ण—सोने के; लाङ्गलैः—हलों से;
कृष्ट्वा—जोत कर; तत्र—वहाँ; यथा-आम्नायम्—प्रामाणिक अधिकारियों के अनुसार; दीक्षयाम् चक्रिरे—दीक्षा दी; नृपम्—
राजाओं को।

तत्पश्चात् ब्राह्मण पुरोहितों ने यज्ञस्थली की सोने के हल से जुताई की और प्रामाणिक
विद्वानों द्वारा नियत प्रथाओं के अनुसार यज्ञ के लिए राजा युधिष्ठिर को दीक्षा दी।

हैमाः किलोपकरणा वरुणस्य यथा पुरा ।

इन्द्रादयो लोकपाला विरिञ्चिभवंसंयुताः ।

सगणाः सिद्धगन्धर्वा विद्याधरमहोरगाः ॥ १३ ॥

मुनयो यक्षरक्षांसि खगकिन्नरचारणाः ।

राजानश्च समाहूता राजपत्न्यश्च सर्वशः ॥ १४ ॥

राजसूयं समीयुः स्म राज्ञः पाण्डुसुतस्य वै ।

मेनिरे कृष्णभक्तस्य सूपपन्नमविस्मिताः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

हैमाः—सोने के बने; किल—निस्सन्देह; उपकरणाः—बर्तन; वरुणस्य—वरुण के; यथा—जिस तरह; पुरा—प्राचीनकाल में;
इन्द्र-आदयः—इन्द्र इत्यादि; लोक-पालाः—लोकों के शासनकर्ता; विरिञ्चि-भवं-संयुताः—ब्रह्मा तथा शिव समेत; स-गणाः—
उनके सेवकों सहित; सिद्ध-गन्धर्वाः—सिद्ध तथा गन्धर्वगण; विद्याधर—विद्याधर; महा-उरगाः—तथा महान् सर्पगण; मुनयः—
मुनिगण; यक्ष-रक्षांसि—यक्ष तथा राक्षसगण; खग-किन्नर-चारणाः—दैवी पक्षी, किन्नर तथा चारण; राजानः—राजा; च—
तथा; समाहूताः—बुलाये गये; राज—राजाओं की; पत्न्यः—पत्नियाँ; च—भी; सर्वशः—सभी स्थानों से; राजसूयम्—राजसूय
यज्ञ में; समीयुः स्म—आई; राज्ञः—राजा के; पाण्डु-सुतस्य—पाण्डु के पुत्रों के; वै—निस्सन्देह; मेनिरे—विचार किया; कृष्ण-
भक्तस्य—कृष्णभक्त के लिए; सु-उपपन्नम्—नितान्त उपयुक्त; अविस्मिताः—चकित नहीं।

यज्ञ के निमित्त पात्र सोने के बने थे जिस तरह कि प्राचीनकाल में भगवान् वरुण द्वारा

सम्पन्न हुए यज्ञ में थे। इन्द्र, ब्रह्मा, शिव और अनेक लोकपाल, सिद्ध तथा गन्धर्व एवं उनके पार्षद, विद्याधर, महान् सर्प, मुनि, यक्ष, राक्षस, दैवी पक्षी, किन्नर, चारण तथा पार्थिव राजा— सभी को आमंत्रित किया गया था और वे पाण्डु-पुत्र राजा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में सभी दिशाओं से आये भी थे। वे यज्ञ के ऐश्वर्य को देख कर रंचमात्र भी चकित नहीं हुए, क्योंकि कृष्णभक्त के लिए यही सर्वथा उपयुक्त था।

तात्पर्य : महाराज युधिष्ठिर विश्व-भर में महान् कृष्णभक्त के रूप में विख्यात थे, अतएव उनके लिए कुछ भी असम्भव नहीं था।

अयाजयन्महाराजं याजका देववर्चसः ।

राजसूयेन विधिवत्प्रचेतसमिवामराः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

अयाजयन्—यज्ञ सम्पन्न किया; महा-राजम्—महान् राजा के लिए; याजकाः—यज्ञ-पुरोहितों ने; देव—देवताओं के; वर्चसः—बलशाली; राजसूयेन—राजसूय द्वारा; विधि-वत्—वेदों के आदेशानुसार; प्रचेतसम्—वरुण को; इव—जिस तरह; अमराः—देवताओं ने।

देवताओं के सदृश शक्तिसम्पन्न पुरोहितों ने वैदिक आदेशों के अनुसार राजा युधिष्ठिर के लिए उसी तरह राजसूय यज्ञ सम्पादित किया जिस तरह पूर्वकाल में देवताओं ने वरुण के लिए किया था।

सूत्येऽहन्यवनीपालो याजकान्सदसस्पतीन् ।

अपूजयन्महाभागान्यथावत्सुसमाहितः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

सूत्ये—सोमरस निकालने के लिए; अहनि—दिन में; अवनी-पालः—राजा ने; याजकान्—यज्ञ कराने वालों की; सदसः—सभा के; पतीन्—प्रमुखों की; अपूजयत्—पूजा; महा-भागान्—महान्; यथावत्—उचित रीति से; सु-समाहितः—मनोयोग से।

सोमरस निकालने के दिन राजा युधिष्ठिर ने अच्छी तरह तथा बड़े ही ध्यानपूर्वक पुरोहितों की एवं सभा के श्रेष्ठ पुरुषों की पूजा की।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद श्रीकृष्ण में लिखते हैं—“वैदिक पद्धति के अनुसार जब भी यज्ञ की व्यवस्था की जाती है तब यज्ञ में भाग लेने वाले सदस्यों को सोम नामक पौधे का रस पिलाया जाता है। सोमरस एक प्रकार का प्राणदायक पेय है। सोमरस निकालने के दिन महाराज युधिष्ठिर ने उस विशिष्ट पुजारी का सादर स्वागत किया जिसे यज्ञ सम्बन्धी विधियों की औपचारिक त्रुटियाँ ढूँढ़

निकालने के लिए लगाया गया था। भाव यह है कि वैदिक मंत्रों का सही ढंग से उच्चारण किया जाना चाहिए और सही स्वराघात के साथ जाप किया जाना चाहिए। यदि इस कार्य में लगे पुजारीगण कोई त्रुटि करते हैं, तो जाँच करने वाला या निर्णायक पुजारी तुरन्त सुधार कर देता है, जिससे नियत कर्मकाण्ड सही ढंग से सम्पन्न हो जाता है। जब तक यज्ञ को सही ढंग से सम्पन्न नहीं किया जाता तब तक यज्ञ से वांछित फल प्राप्त नहीं किया जा सकता। इस कलिकाल में ऐसा कोई विद्वान् ब्राह्मण या पुरोहित उपलब्ध नहीं इसीलिए ऐसे यज्ञ करने की मनाही है। शास्त्रों में जिस एकमात्र यज्ञ की संस्तुति हुई है, वह है हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन।”

सदस्याच्छयार्हणार्ह वै विमृशन्तः सभासदः ।

नाध्यगच्छन्ननैकान्त्यात्सहदेवस्तदाब्रवीत् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

सदस्य—सभा का सदस्य; अछय—प्रथम; अर्हण—पूजा; अर्हम्—पात्र; वै—निस्सन्देह; विमृशन्तः—विचार-विमर्श करते हुए; सभा—सभा में; सदः—आसीन; न अध्यगच्छन्—किसी निर्णय पर नहीं पहुँच पाये; अनैक-अन्त्यात्—बड़ी संख्या होने से (योग्य पात्रों के); सहदेवः—महाराज युधिष्ठिर का छोटा भाई सहदेव; तदा—तब; अब्रवीत्—बोला।

तब सभासदों ने विचार-विमर्श किया कि उनमें से किसकी सबसे पहले पूजा की जाय।

किन्तु क्योंकि अनेक व्यक्ति इस सम्मान के योग्य थे अतः वे निश्चय कर पाने में असमर्थ थे। अन्त में सहदेव बोल पड़े।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद लिखते हैं, “दूसरी महत्वपूर्ण विधि है कि ऐसे यज्ञ-उत्सव की सभा में अत्यन्त योग्य महापुरुष की सबसे पहले पूजा की जाय। यह विशेष उत्सव अग्र-पूजा कहलाता है। अग्र का अर्थ है “पहला” और पूजा का अर्थ है “पूजा।” यह अग्रपूजा राष्ट्रपति के चुनाव की तरह है। उस यज्ञ-उत्सव में सारे सदस्य अत्यन्त सुयोग्य थे। अग्रपूजा के लिए किसी ने किसी का नाम प्रस्तावित किया और किसी ने अन्य किसी का।”

जैसाकि महान् आचार्य जीव गोस्वामी इंगित करते हैं, इस अध्याय का श्लोक १५ बतलाता है कि सभा के सदस्य यज्ञ के ऐश्वर्य को देख कर चकित नहीं थे क्योंकि वे जानते थे कि राजा युधिष्ठिर कृष्णभक्त थे। तो भी श्लोक १८ बतलाता है कि सभा अग्रपूजा के लिए सर्वाधिक उपयुक्त व्यक्ति का चुनाव नहीं कर सकी। इससे सूचित होता है कि वहाँ पर उपस्थित कई ब्राह्मण स्वरूपसिद्ध अध्यात्मवादी नहीं थे अपितु वे रूढ़िवादी ब्राह्मण थे, जो वैदिक-ज्ञान के परम निर्णय के प्रति अनिश्चित

थे ।

इसी तरह आचार्य विश्वनाथ टीका करते हैं कि सभा के अस्थिरचित्त वाले सदस्य अल्पज्ञ थे, वे ब्रह्मा, शिव तथा द्वैपायन व्यासदेव जैसे महापुरुष नहीं थे, जो सोच रहे थे, “चूँकि कोई हमारा मत नहीं जानना चाहता तो हम कुछ क्यों कहें ? यही नहीं, उनमें सहदेव हैं, जो सभी परिस्थितियों का विश्लेषण करने में अपनी तीक्ष्ण सलाह के लिए विख्यात हैं। वे अग्रपूजा के लिए व्यक्ति का चुनाव करने में सहायता दे सकते हैं। यदि वे किसी कारणवश ऐसा नहीं करते या परिस्थिति को समझ नहीं सकते तभी बिना किसी के पूछे जाने पर हम बोलेंगे।” इस तरह अपने मन को स्थिर करके सारे महापुरुष मौन रहे। उस सभा में जो हुआ उसे समझने के लिए श्रील विश्वनाथ यही जानकारी देते हैं।

अर्हति ह्यच्युतः श्रेष्ठ्यं भगवान्सात्वतां पतिः ।

एष वै देवताः सर्वा देशकालधनादयः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

अर्हति—योग्य है; हि—निस्सन्देह; अच्युतः—अच्युत कृष्ण; श्रेष्ठ्यम्—श्रेष्ठ पद; भगवान्—भगवान्; सात्वताम्—यादवों के; पतिः—प्रधान; एषः—वह; वै—निश्चय ही; देवताः—देवतागण; सर्वाः—सभी; देश—स्थान (यज्ञ के लिए); काल—समय; धन—भौतिक साज-सामान; आदयः—इत्यादि।

[सहदेव ने कहा] : निश्चय ही भगवान् अच्युत तथा यादवों के प्रमुख ही इस सर्वोच्च पद के योग्य हैं। सच तो यह है कि वे यज्ञ में पूजे जाने वाले समस्त देवताओं से तथा साथ ही पूजा के पवित्र स्थान, समय तथा साज-सामान जैसे पक्षों से समन्वित हैं।

यदात्मकमिदं विश्वं क्रतवश्च यदात्मकाः ।

अग्निराहुतयो मन्त्रा साङ्ख्यं योगश्च यत्परः ॥ २० ॥

एक एवाद्वितीयोऽसावैतदात्म्यमिदं जगत् ।

आत्मनात्माश्रयः सभ्याः सृजत्यवति हन्त्यजः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

यत्-आत्मकम्—जिस पर टिका; इदम्—यह; विश्वम्—ब्रह्माण्ड; क्रतवः—बड़े बड़े यज्ञों का सम्पन्न किया जाना; च—तथा; यत्-आत्मकाः—जिस पर टिका; अग्निः—पवित्र अग्नि; आहुतयः—आहुतियाँ; मन्त्राः—मंत्र; साङ्ख्यम्—दार्शनिक खोज का सिद्धान्त; योगः—ध्यान की कला; च—तथा; यत्—जिस पर; परः—लक्षित; एकः—एक; एव—अकेला; अद्वितीयः—अद्वितीय; असौ—वह; ऐतत्-आत्म्यम्—अपने माध्यम से (अर्थात् अपनी शक्तियों से); इदम्—यह; जगत्—संसार; आत्मना—अपने द्वारा (अर्थात् शक्तियों से); आत्म—स्वयं ही; आश्रयः—उनका आश्रय पाकर; सभ्याः—हे सभा के सदस्यो; सृजति—उत्पन्न करता है; अवति—पालता है; हन्ति—तथा संहार करता है; अजः—अजन्मा।

यह समस्त ब्रह्माण्ड उन्हीं पर टिका है और वैसे ही महान् यज्ञों का सम्पन्न किया जाना,

उनकी पवित्र अग्नियाँ, आहुतियाँ तथा मंत्र भी उन्हीं पर टिकी हैं। सांख्य तथा योग दोनों ही उन अद्वितीय को अपना लक्ष्य बनाते हैं। हे सभासदो, वह अजन्मा भगवान् एकमात्र अपने पर निर्भर रहते हुए इस जगत को अपनी निजी शक्तियों से उत्पन्न करता है, पालता और विनष्ट करता है। इस तरह इस ब्रह्माण्ड का अस्तित्व एकमात्र उन्हीं पर निर्भर करता है।

विविधानीह कर्माणि जनयन्त्यदवेक्षया ।

ईहते यदयं सर्वः श्रेयो धर्मादिलक्षणम् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

विविधानि—विविध; इह—इस संसार में; कर्माणि—भौतिक कर्म; जनयन्—उत्पन्न करते हुए; यत्—जिसके द्वारा; अवेक्षया—कृपा; ईहते—प्रयत्न करते हैं; यत्—जो; अयम्—यह संसार; सर्वः—सारा; श्रेयः—आदर्शों के लिए; धर्म-आदि—धार्मिकता इत्यादि; लक्षणम्—लक्षण।

वे इस जगत में विविध कर्मों को उत्पन्न करते हैं और इस तरह उनकी ही कृपा से सारा संसार धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष के आदर्शों के लिए प्रयत्नशील रहता है।

तस्मात्कृष्णाय महते दीयतां परमार्हणम् ।

एवं चेत्सर्वभूतानामात्मनश्चार्हणं भवेत् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—इसलिए; कृष्णाय—कृष्ण को; महते—परम; दीयताम्—दिया जाना चाहिए; परम—सर्वोच्च; अर्हणम्—सम्मान; एवम्—इस प्रकार; चेत्—यदि; सर्व—समस्त; भूतानाम्—जीवों का; आत्मनः—अपने; च—तथा; अर्हणम्—आदर करना; भवेत्—होगा।

इसलिए हमें चाहिए कि भगवान् कृष्ण को सर्वोच्च सम्मान दें। यदि हम ऐसा करते हैं, तो हम सारे जीवों का सम्मान तो करेंगे ही, साथ ही अपने आपको भी सम्मान देंगे।

सर्वभूतात्मभूताय कृष्णायानन्यदर्शिने ।

देयं शान्ताय पूर्णाय दत्तस्यानन्त्यमिच्छता ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

सर्व—सारे; भूत—जीवों का; आत्म—आत्मा; भूताय—से युक्त; कृष्णाय—कृष्ण को; अनन्य—कभी भी पृथक् के रूप में नहीं; दर्शिने—द्रष्टा; देयम्—(मान) दिया जाय; शान्ताय—शान्त रहने वाले को; पूर्णाय—पूर्ण को; दत्तस्य—दिये हुए का; आनन्त्यम्—असीम वृद्धि; इच्छता—चाहने वाले के द्वारा।

जो भी व्यक्ति यह चाहता हो कि दिये गये सम्मान का असीम प्रतिदान मिले उसे कृष्ण का सम्मान करना चाहिए जो पूर्णतया शान्त हैं, समस्त जीवों की पूर्ण आत्मा भगवान् हैं और जो किसी भी वस्तु को अपने से पृथक् नहीं मानते।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद इस प्रकार लिखते हैं, “[सहदेव ने कहा] देवियो और सज्जनो! श्रीकृष्ण के विषय में चर्चा करना अनावश्यक है, क्योंकि आप सभी श्रेष्ठजन परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण को जानते हैं। श्रीकृष्ण के लिए शरीर एवं आत्मा, शक्ति एवं शक्तिमान, अथवा शरीर के विभिन्न अंगों के बीच कोई विशेष भौतिक अन्तर नहीं है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति कृष्ण का ही अंश है, अतः कृष्ण तथा अनेक जीवों में कोई गुणात्मक अन्तर नहीं है। प्रत्येक वस्तु कृष्ण की भौतिक एवं दिव्य शक्तियों से उद्भूत है। श्रीकृष्ण की शक्तियाँ अग्नि की उष्मा तथा प्रकाश के समान हैं। उष्मा एवं प्रकाश तथा स्वयं अग्नि के गुण में कोई अन्तर नहीं होता, अतएव महायज्ञ की अग्रपूजा कृष्ण को अर्पित करनी चाहिए और किसी भी व्यक्ति को इससे असहमत नहीं होना चाहिए—परम आत्मा के रूप में श्रीकृष्ण प्रत्येक जीवात्मा में विद्यमान हैं और यदि हम उन्हें सन्तुष्ट कर सकते हैं, तो स्वयं ही प्रत्येक जीवात्मा सन्तुष्ट हो जायेगा।”

इत्युक्त्वा सहदेवोऽभूत्तूष्णीं कृष्णानुभाववित् ।

तच्छ्रुत्वा तुष्टुवुः सर्वे साधु साध्विति सत्तमाः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; उक्त्वा—कह कर; सहदेवः—सहदेव; अभूत्—हो गये; तूष्णीम्—मौन; कृष्ण—कृष्ण का; अनुभाव—प्रभाव; वित्—अच्छी तरह जानने वाला; तत्—यह; श्रुत्वा—सुन कर; तुष्टुवुः—प्रशंसा की; सर्वे—समस्त; साधु साधु इति—‘बहुत अच्छा’ ‘बहुत अच्छा’; सत्—सन्त-पुरुषों में; तमाः—सर्वश्रेष्ठ।

[शुकदेव गोस्वामी ने कहा]: यह कह कर, भगवान् कृष्ण की शक्तियों को समझने वाले सहदेव मौन हो गये। और उनके शब्द सुनकर वहाँ पर उपस्थित सभी सज्जनों ने “बहुत अच्छा, बहुत अच्छा” कह कर उन्हें बधाई दी।

श्रुत्वा द्विजेरितं राजा ज्ञात्वा हार्दं सभासदाम् ।

समर्हयद्धृषीकेशं प्रीतः प्रणयविह्वलः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

श्रुत्वा—सुन कर; द्विज—ब्राह्मणों द्वारा; ईरितम्—कहा गया; राजा—राजा युधिष्ठिर; ज्ञात्वा—जान कर; हार्दम्—मनोभाव; सभा-सदाम्—सभा के सदस्यों के; समर्हयत्—अच्छी तरह पूजा की; हृषीकेशम्—भगवान् कृष्ण की; प्रीतः—प्रसन्न; प्रणय—प्रेम से; विह्वलः—विभोर।

राजा ब्राह्मणों की इस घोषणा से अत्यन्त प्रसन्न हुए क्योंकि वे इससे सम्पूर्ण सभा की मनोदशा को समझ गये। उन्होंने प्रेम से विभोर होकर इन्द्रियों के स्वामी भगवान् कृष्ण की पूजा

की ।

तत्पादाववनिज्यापः शिरसा लोकपावनीः ।

सभार्यः सानुजामात्यः सकुटुम्बो वहन्मुदा ॥ २७ ॥

वासोभिः पीतकौषेयैर्भूषणैश्च महाधनैः ।

अर्हयित्वाश्रुपूर्णाक्षो नाशकत्समवेक्षितुम् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

तत्—उसको; पादाँ—चरणों को; अवनिज्य—धोकर; आपः—जल; शिरसा—अपने सिर पर; लोक—संसार को; पावनीः—पवित्र करने वाली; स—सहित; भार्यः—अपनी पत्नी; स—सहित; अनुज—अपने भाइयों; अमात्यः—तथा अपने मंत्रियों; स—सहित; कुटुम्बः—अपने परिवार; वहन्—ले जाते हुए; मुदा—हर्षपूर्वक; वासोभिः—वस्त्रों सहित; पीत—पीले; कौषेयैः—रेशमी; भूषणैः—गहनों सहित; च—तथा; महा-धनैः—मूल्यवान्; अर्हयित्वा—सम्मान करके; अश्रु—आँसुओं से; पूर्ण—भरे; अक्षः—नेत्रों से; न अशकत्—वह असमर्थ था; समवेक्षितुम्—उनकी ओर ताकने में।

भगवान् कृष्ण के चरण पखारने के बाद महाराज युधिष्ठिर ने प्रसन्नतापूर्वक उस जल को अपने सिर पर छिड़का और उसके बाद अपनी पत्नी, भाइयों, अन्य पारिवारिक जनों तथा मंत्रियों के सिरों पर छिड़का। वह जल सारे संसार को पवित्र करने वाला है। जब उन्होंने पीले रेशमी वस्त्रों तथा बहुमूल्य रत्नजटित आभूषणों की भेंटों से भगवान् को सम्मानित किया, तो राजा के अश्रुपूरित नेत्र भगवान् को सीधे देख पाने में बाधक बन रहे थे।

इत्थं सभाजितं वीक्ष्य सर्वे प्राञ्जलयो जनाः ।

नमो जयेति नेमुस्तं निपेतुः पुष्पवृष्टयः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

इत्थम्—इस प्रकार; सभाजितम्—सम्मानित हुआ; वीक्ष्य—देख कर; सर्वे—सभी; प्राञ्जलयः—हाथ जोड़े; जनाः—लोग; नमः—“आपको नमस्कार”; जय—“जय हो”; इति—इस प्रकार कहते हुए; नेमुः—शीश नवाया; तम्—उसको; निपेतुः—गिरने लगी; पुष्प—फूलों की; वृष्टयः—वर्षा।

कृष्ण को इस तरह सम्मानित होते देखकर वहाँ पर उपस्थित प्रायः सभी लोग सम्मान में अपने हाथ जोड़कर बोल उठे, “आपको नमस्कार, आपकी जय हो।” और तब उन्हें शीश नवाया। ऊपर से फूलों की वर्षा होने लगी।

इत्थं निशम्य दमघोषसुतः स्वपीठा-

दुत्थाय कृष्णागुणवर्णनजातमन्युः ।

उत्क्षिप्य बाहुमिदमाह सदस्यमर्षी

संश्रावयन्भगवते परुषाण्यभीतः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

इत्थम्—इस प्रकार; निशाम्य—सुन कर; दमघोष-सुतः—दमघोष का पुत्र (शिशुपाल); स्व—अपने; पीठात्—आसन से; उत्थाय—उठ कर; कृष्ण-गुण—भगवान् कृष्ण के गुणों का; वर्णन—वर्णन; जात—उत्पन्न; मन्युः—क्रोध; उल्लिख्य—हिलाते हुए; बाहुम्—अपनी भुजाएँ; इदम्—यह; आह—कहा; सदसि—सभा के मध्य; अमर्षी—असहिष्णु; संश्रावयन्—सम्बोधित करते हुए; भगवते—भगवान् पर; परुषाणि—कटु वचन; अभीतः—बिना किसी भय के।

दमघोष का असहिष्णु पुत्र कृष्ण के दिव्यगुणों की प्रशंसा होते सुन कर क्रुद्ध हो उठा। वह अपने आसन से उठ कर खड़ा हो गया और क्रोध से अपने हाथ हिलाते हुए निर्भय होकर सारी सभा के समक्ष भगवान् के विरुद्ध निम्नानुसार कटु शब्द कहने लगा।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद लिखते हैं, “उस सभा में शिशुपाल भी उपस्थित था। अनेक कारणों से वह श्रीकृष्ण का घोर शत्रु मानता था, विशेषकर इसलिए कि श्रीकृष्ण ने विवाहोत्सव से रुक्मिणीदेवी का हरण कर लिया था। इसलिए वह कृष्ण का इतना सम्मान एवं उनके गुणों की प्रशंसा को सहन नहीं कर सका। वह भगवान् की कीर्ति को सुनकर सुखी होने की बजाय अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा।”

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती उल्लेख करते हैं कि जब सहदेव ने अग्रपूजा के लिए कृष्ण के नाम का प्रस्ताव रखा तो शिशुपाल ने कोई आपत्ति नहीं की क्योंकि वह युधिष्ठिर के यज्ञ का विध्वंस करना चाहता था। यदि शिशुपाल पहले ही कृष्ण के नाम का विरोध करता और कोई अन्य व्यक्ति चुन लिया जाता तब तो यह यज्ञ ठीक से सम्पन्न हो जाता। इसलिए शिशुपाल ने कृष्ण को चुन लिया जाने दिया। उसने पूजा समाप्त होने तक प्रतीक्षा की और तब इस आशा से बोला कि इस प्रकार वह दिखला सकेगा कि यह यज्ञ विध्वंस हो चुका है। इस तरह वह महाराज युधिष्ठिर के प्रयास को नष्ट कर देगा। इस प्रसंग में आचार्य ने ‘स्मृति’ से निम्नलिखित सन्दर्भ उद्धृत किया है—*अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानां च व्यतिक्रमः* जहाँ अपूज्यों की पूजा होती है, वहाँ असली पूजनीयों की पूजा होना अपराध है। एक अन्य कथन भी है—*प्रतिबध्नाति हि श्रेयः पूज्यापूज्यव्यतिक्रमः* कौन पूज्य है और कौन अपूज्य, इसे ठीक से न समझने से जीवन की प्रगति अवरुद्ध होगी।

ईशो दुरत्ययः काल इति सत्यवती श्रुतिः ।
वृद्धानामपि यद्बुद्धिर्बालवाक्यैर्विभिद्यते ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

ईशः—ईश्वर; दुरत्ययः—जिससे बचा न जा सके; कालः—समय; इति—इस प्रकार; सत्य-वती—सच; श्रुतिः—वेद-वाक्य; वृद्धानाम्—गुरुजनों की; अपि—भी; यत्—चूँकि; बुद्धिः—बुद्धि; बाल—बालक के; वाक्यैः—शब्दों से; विभिद्यते—चकरा जाती है।

[शिशुपाल ने कहा] : वेदों का यह कथन कि समय ही सबका अनिवार्य ईश्वर है निस्सन्देह सत्य सिद्ध हुआ है, क्योंकि बुद्धिमान गुरुजनों की बुद्धि निरे बालक के शब्दों से अब चकरा गई है।

यूयं पात्रविदां श्रेष्ठा मा मन्ध्वं बालभाषीतम् ।
सदसस्पतयः सर्वे कृष्णो यत्सम्मतोऽर्हणे ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

यूयम्—तुम सभी; पात्र—योग्यजनों के; विदाम्—जानने वालों के; श्रेष्ठाः—सर्वोत्तम; मा मन्ध्वम्—परवाह न करें; बाल—बालक के; भाषितम्—कथनों को; सदसः—पतयः—हे सभा के नायको; सर्वे—सभी; कृष्णः—कृष्ण; यत्—क्योंकि; सम्मतः—चुना हुआ; अर्हणे—सम्मान किये जाने हेतु।

हे सभा-नायको, आप लोग अच्छी तरह जानते हैं कि सम्मान किये जाने के लिए उपयुक्त पात्र कौन है। अतः आप लोग इस बालक के वचनों की परवाह न करें कि वह यह दावा कर रहा है कि कृष्ण पूजा के योग्य हैं।

तपोविद्याव्रतधरान्ज्ञानविध्वस्तकल्मषान् ।
परमऋषीन्ब्रह्मनिष्ठान्लोकपालैश्च पूजितान् ॥ ३३ ॥
सदस्पतीनतिक्रम्य गोपालः कुलपांसनः ।
यथा काकः पुरोडाशं सपर्यां कथमर्हति ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

तपः—तपस्या; विद्या—वैदिक ज्ञान; व्रत—कठिन व्रत; धरान्—धारण करने वाले; ज्ञान—आध्यात्मिक ज्ञान से; विध्वस्त—उन्मूलित; कल्मषान्—जिनके विकार; परम—सर्वोच्च; ऋषीन्—ऋषियों को; ब्रह्म—परम सत्य के प्रति; निष्ठान्—समर्पित; लोक-पालैः—लोकों के शासकों द्वारा; च—तथा; पूजितान्—पूजित; सदः-पतीन्—सभापतियों को; अतिक्रम्य—लाँघ कर; गोपालः—ग्वाला; कुल—अपने कुल का; पांसनः—कलंक; यथा—जिस तरह; काकः—कौवा; पुरोडाशम्—पवित्र खीर (देवताओं को अर्पित की गई); सपर्याम्—पूजा के; कथम्—कैसे; अर्हति—योग्य हो सकता है।

आप लोग इस सभा के सर्वाधिक उन्नत सदस्यों को—ब्रह्म के प्रति समर्पित तपस्या की शक्ति, दैवी अन्तर्दृष्टि तथा कठोर व्रत में लगे रहने वाले, ज्ञान से पवित्र हुए तथा ब्रह्माण्ड के शासकों द्वारा भी पूजित सर्वोच्च ऋषियों को—कैसे छोड़ सकते हैं? यह ग्वालबाल, जो कि अपने कुल के लिए कलंक है, आप लोगों की पूजा के योग्य कैसे हो सकता है? क्या कौवा पवित्र प्रसाद की खीर खाने का पात्र बन सकता है?

तात्पर्य : महान् टीकाकार श्रीधर स्वामी ने शिशुपाल के शब्दों का विश्लेषण इस प्रकार से किया है—गोपाल शब्द का अर्थ न केवल “ग्वाला” होता है अपितु “वेदों तथा पृथ्वी का रक्षक” भी है।

इसी प्रकार कुल-पांसन के दो अर्थ हैं। शिशुपाल इस शब्द से “अपने कुल का कलंक” कहना चाह रहा था, जो अर्थ इस तरह विग्रह करने से निकलता है, किन्तु इसका विश्लेषण कु-लपाम् अंसन के रूप में करने से सर्वथा भिन्न अर्थ निकलता है। कुलपाम् उनका सूचक है, जो वेदों के विपरीत कुटिल शब्दों से खिलवाड़ करते हैं। अंसन की व्युत्पत्ति अंसयति क्रिया से है, जिसका अर्थ है “नष्ट करने वाला।” दूसरे शब्दों में वह भगवान् कृष्ण की प्रशंसा इस रूप में कर रहा था: “वह जो सत्य की प्रकृति के बारे में सारे भ्रान्त तथा बेहूदे अनुमानों को दूर कर देता है।” इसी प्रकार यद्यपि शिशुपाल यथा अकाकः द्वारा भगवान् कृष्ण की तुलना कौवे से करना चाह रहा था किन्तु इन शब्दों का भी विग्रह यथा-काकः के रूप में किया जा सकता है। उस दशा में, श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार काक शब्द क तथा आक के संयोग से बना है, जो भौतिक सुख तथा दुख को सूचित करते हैं। इस तरह भगवान् कृष्ण इस दृष्टि से अकाक हैं, क्योंकि वे शुद्ध दिव्य पद पर होने से समस्त भौतिक दुख तथा सुख से परे हैं। अन्त में, शिशुपाल का यह कहना ठीक था कि कृष्ण केवल पुरोडाश के ही पात्र न थे, जो छोटे देवों को सोम रस के स्थान पर दिया जाता है वस्तुतः भगवान् कृष्ण हमारे पास की हर वस्तु प्राप्त करने के पात्र हैं, क्योंकि वे हर वस्तु के, जिसमें हम भी सम्मिलित हैं, चरम स्वामी हैं। अतः हमें चाहिए कि हम अपना जीवन उन्हें दें, न कि केवल पुरोडाश की औपचारिक भेंट।

वर्णाश्रमकुलापेतः सर्वधर्मबहिष्कृतः ।

स्वैरवर्ती गुणैर्हीनः सपर्या कथमर्हति ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

वर्ण—जाति; आश्रम—चार आध्यात्मिक आश्रम; कुल—तथा परिवार से; अपेतः—विहीन; सर्व—सभी; धर्म—धार्मिक कर्तव्य के नियम; बहिः-कृतः—बाहर किया गया; स्वैर—स्वतंत्र रूप से; वर्ती—आचरण करता हुआ; गुणैः—गुणों से; हीनः—रहित; सपर्याम्—पूजा; कथम्—कैसे; अर्हति—योग्य है।

जो वर्ण तथा आश्रम के या पारिवारिक शिष्टाचार के किसी भी सिद्धान्त का पालन नहीं करता, जो सारे धार्मिक कर्तव्यों से बहिष्कृत कर दिया गया है, जो मनमाना आचरण करता है तथा जिसमें कोई सद्गुण नहीं है, भला ऐसा व्यक्ति किस तरह पूजा किये जाने योग्य हो सकता है?

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद की टीका है “वास्तव में श्रीकृष्ण की न तो कोई जाति है न उसे किसी वृत्तिपरक कर्तव्य का पालन करना पड़ता है। वेदों में यह कहा गया है कि परमेश्वर को एक भी

निर्धारित कर्तव्य नहीं करना पड़ता। उन्हें जो कुछ भी करना होता है, उसे उनकी विभिन्न शक्तियाँ सम्पन्न करती हैं...शिशुपाल ने परोक्ष में यह कहकर कृष्ण की प्रशंसा की कि वे वैदिक आदेश की सीमा के भीतर नहीं रहते। यह सत्य है क्योंकि वे भगवान् हैं। उनके कुछ भी गुण नहीं हैं का अर्थ है कि श्रीकृष्ण के एक भी भौतिक गुण नहीं हैं। क्योंकि वे भगवान् हैं अतएव वे परम्परा या सामाजिक एवं धार्मिक सिद्धान्तों की परवाह किये बिना स्वतंत्र रूप से कार्य करते हैं।”

ययातिनैषां हि कुलं शप्तं सद्भिर्बहिष्कृतम् ।
वृथापानरतं शश्वत्सपर्या कथमर्हति ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

ययातिना—ययाति द्वारा; एषाम्—उनका; हि—निस्सन्देह; कुलम्—कुल; शप्तम्—शापित; सद्भिः—शिष्ट लोगों द्वारा; बहिः-कृतम्—निकाला हुआ; वृथा—व्यर्थ; पान—सुरापान; रतम्—लत लगी हुई; शश्वत्—सदैव; सपर्याम्—पूजा के लिए; कथम्—कैसे; अर्हति—वह योग्य है।

ययाति ने इन यादवों के कुल को शाप दिया था, तभी से ये लोग ईमानदार व्यक्तियों द्वारा बहिष्कृत कर दिये गये और इन्हें सुरापान की लत पड़ गई। तब भला कृष्ण पूजा के योग्य कैसे है?

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने शिशुपाल के वचनों का श्लिष्ट अर्थ यह दिखाने के लिए दिया है कि वह किस तरह कृष्ण तथा उनके यदुवंश की अनचाहे प्रशंसा करता रहा, “यद्यपि यदुवंशियों को ययाति ने शाप दिया था किन्तु महान् सन्तों द्वारा वे इस शाप से मुक्त किये जा चुके थे (बहिष्कृतम्) जिसके फलस्वरूप कार्तवीर्य जैसे पुरुषों द्वारा राज-पद तक ऊपर ले जाये गये थे। इस तरह वे पान अर्थात् यदुओं के प्रधान श्रीकृष्ण वृथा पूजा के योग्य कैसे हो सकते हैं? उनकी तो ऐश्वर्यमयी पूजा होनी चाहिए।”

ब्रह्मर्षिसेवितान्देशान्द्वैतेऽब्रह्मवर्चसम् ।
समुद्रं दुर्गमाश्रित्य बाधन्ते दस्यवः प्रजाः ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्म-ऋषि—महान् ब्राह्मण-ऋषियों द्वारा; सेवितान्—सेवित; देशान्—देशों को (यथा मथुरा); हित्वा—त्याग कर; एते—ये (यादवजन); अब्रह्म-वर्चसम्—जहाँ ब्राह्मण नियमों का पालन नहीं किया जाता; समुद्रम्—समुद्र में; दुर्गम्—किले में; आश्रित्य—शरण लेकर; बाधन्ते—बाधा पहुँचाते हैं; दस्यवः—चोर; प्रजाः—जनता को।

इन यादवों ने ब्रह्मर्षियों द्वारा बसाई गई पवित्र भूमि को छोड़ दिया है और समुद्र में एक

किले में जाकर शरण ली है, जहाँ ब्राह्मण-नियमों का पालन नहीं होता। वहाँ ये चोरों की तरह अपनी प्रजा को तंग करते हैं।

तात्पर्य : ब्रह्मर्षि-सेवितान् देशान् (सन्त-पुरुषों द्वारा निवास की जानेवाली पवित्र भूमि) से मथुरा जनपद अभीष्ट है। श्रील प्रभुपाद लिखते हैं “शिशुपाल इसलिए बावला हो रहा था, क्योंकि कृष्ण को उस सभा में अग्रपूजा के लिए चुना गया था और वह इतनी लापरवाही से बोल रहा था, मानो उसका सारा सौभाग्य नष्ट हो चुका हो।”

एवमादीन्यभद्राणि बभाषे नष्टमङ्गलः ।

नोवाच किञ्चिद्भगवान्यथा सिंहः शिवारुतम् ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; आदीनि—और अधिक; अभद्राणि—कटु वचन; बभाषे—बोलता रहा; नष्ट—विनष्ट; मङ्गलः—सौभाग्य; न उवाच—नहीं कहा; किञ्चित्—कुछ भी; भगवान्—भगवान् ने; यथा—जिस तरह; सिंहः—सिंह; शिवा—सियार के; रुतम्—रोदन पर।

[शुकदेव गोस्वामी कहते हैं] : समस्त सौभाग्य से वंचित शिशुपाल ऐसे ही तथा अन्य अपमानसूचक शब्द बोलता रहा, किन्तु भगवान् ने कुछ भी नहीं कहा, जिस तरह सिंह सियार के रोदन की परवाह नहीं करता।

भगवन्नन्दनं श्रुत्वा दुःसहं तत्सभासदः ।

कर्णौ पिधाय निर्जग्मुः शपन्तश्चेदिपं रुषा ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

भगवत्—भगवान् की; निन्दनम्—निन्दा, आलोचना; श्रुत्वा—सुन कर; दुःसहम्—असह्य; तत्—वह; सभा-सदः—सभा के सदस्य; कर्णौ—अपने कानों को; पिधाय—मूँद कर; निर्जग्मुः—बाहर चले गये; शपन्तः—कोसते हुए; चेदि-पम्—चेदि के राजा (शिशुपाल) को; रुषा—क्रुद्ध होकर।

भगवान् की ऐसी असह्य निन्दा सुनकर सभा के कई सदस्यों ने अपने कान बंद लिये और गुस्से में चेदि-नरेश को कोसते हुए बाहर चले गये।

निन्दां भगवतः शृण्वंस्तत्परस्य जनस्य वा ।

ततो नापैति यः सोऽपि यात्यधः सुकृताच्च्युतः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

निन्दाम्—निन्दा, आलोचना; भगवतः—भगवान् की; शृण्वन्—सुनते हुए; तत्—उससे; परस्य—श्रद्धावान्; जनस्य—पुरुष की; वा—अथवा; ततः—वहाँ से; न अपैति—नहीं चला जाता; यः—जो; सः—वह; अपि—निस्सन्देह; याति—जाता है; अधः—नीचे; सु-कृतात्—अपने पुण्यकर्मों के उत्तम फलों से; च्युतः—गिरा हुआ।

जिस स्थान पर भगवान् या उनके श्रद्धावान् भक्त की निन्दा होती हो, यदि मनुष्य उस स्थान को तुरन्त छोड़ कर चला नहीं जाता, तो निश्चय ही वह अपने पुण्यकर्मों के फल से वंचित होकर नीचे आ गिरेगा।

ततः पाण्डुसुताः क्रुद्धा मत्स्यकैकयसृञ्जयाः ।

उदायुधाः समुत्तस्थुः शिशुपालजिघांसवः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; पाण्डु-सुताः—पाण्डु के पुत्र; क्रुद्धाः—क्रुद्ध; मत्स्य-कैकय-सृञ्जयाः—मत्स्य, कैकय तथा सृञ्जयगण; उत्-आयुधाः—अपने हथियार उठाये; समुत्तस्थुः—खड़े हो गये; शिशुपाल-जिघांसवः—शिशुपाल को मारने की इच्छा से।

तब पाण्डु-पुत्र क्रुद्ध हो उठे और मत्स्य, कैकय तथा सृञ्जय वंशों के योद्धाओं के साथ वे अपने अपने स्थानों पर शिशुपाल को मारने के लिए तत्पर हथियार उठाते हुए खड़े हो गये।

ततश्चैद्यस्त्वसम्भ्रान्तो जगृहे खड्गचर्मणी ।

भर्त्सयन्कृष्णपक्षीयात्राज्ञः सदसि भारत ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; चैद्यः—शिशुपाल ने; तु—लेकिन; असम्भ्रान्तः—अडिग; जगृहे—ले लिया; खड्ग—तलवार; चर्मणी—तथा ढाल; भर्त्सयन्—निन्दा करते हुए; कृष्ण—कृष्ण के; पक्षीयान्—पक्ष वाले; राज्ञः—राजा; सदसि—सभा में; भारत—हे भरतवंशी।

हे भारत, तब शिशुपाल ने किसी की परवाह न करते हुए वहाँ पर जुटे सारे राजाओं के बीच अपनी तलवार तथा ढाल ले ली और वह भगवान् कृष्ण के पक्षघरों का अपमान करने लगा।

तावदुत्थाय भगवान्स्वान्निवार्य स्वयं रुषा ।

शिरः क्षुरान्तचक्रेण जहार पततो रिपोः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

तावत्—उस समय; उत्थाय—उठ कर; भगवान्—भगवान् ने; स्वान्—अपने (भक्तों) को; निवार्य—रोक कर; स्वयम्—खुद; रुषा—क्रोध से; शिरः—सिर; क्षुर—तेज; अन्त—धार वाले; चक्रेण—अपने चक्र से; जहार—काट लिया; पततः—आक्रमण करते हुए; रिपोः—अपने शत्रु का।

उस समय भगवान् उठ खड़े हुए और उन्होंने अपने भक्तों को रोका। फिर उन्होंने क्रुद्ध होकर अपने तेज धार वाले चक्र को चलाया और आक्रमण कर रहे अपने शत्रु का सिर काट दिया।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने भगवान् के कार्य की व्याख्या इस प्रकार की है : यदि

भगवान् कृष्ण कुछ न करते तो यज्ञशाला में ही विकराल युद्ध हुआ होता और इस तरह सारे यज्ञ में खून बह गया होता और पवित्र वातावरण विनष्ट हो जाता। इसलिए कृष्ण ने अपने प्रिय भक्त युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ की रक्षा करने के लिए तुरन्त ही अपने तेज धार वाले चक्र से शिशुपाल का सिर इस तरह काटा कि यज्ञभूमि में रक्त की एक बूँद भी न गिरने पाई।

शब्दः कोलाहलोऽथासीच्छिशुपाले हते महान् ।
तस्यानुयायिनो भूपा दुद्रुवुर्जीवितैषिणः ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

शब्दः—ध्वनि; कोलाहलः—हो-हल्ला; अथ—तत्पश्चात्; आसीत्—था; शिशुपाले—शिशुपाल के; हते—मारे जाने पर; महान्—विशाल; तस्य—उसके; अनुयायिनः—अनुगामी; भूपाः—राजागण; दुद्रुवुः—भाग गये; जीवित—अपना जीवन; एषिणः—बचाने की आशा से।

जब इस तरह शिशुपाल मार डाला गया तो भीड़ में से भारी शोर उठने लगा। इस उपद्रव का लाभ उठाकर शिशुपाल के समर्थक कुछ राजा तुरन्त ही अपने प्राणों के भय से सभा छोड़कर भाग गये।

तात्पर्य : उपर्युक्त भावार्थ श्रील प्रभुपाद की पुस्तक श्रीकृष्ण से लिया गया है।

चैद्यदेहोत्थितं ज्योतिर्वासुदेवमुपाविशत् ।
पश्यतां सर्वभूतानामुल्केव भुवि खाच्च्युता ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

चैद्य—शिशुपाल; देह—शरीर से; उत्थितम्—उठी हुई; ज्योतिः—ज्योति, प्रकाश; वासुदेवम्—भगवान् श्रीकृष्ण में; उपाविशत्—प्रविष्ट हुई; पश्यताम्—देखते देखते; सर्व—सभी; भूतानाम्—जीवों के; उल्का—पुच्छतारा; इव—सदृश; भुवि—पृथ्वी में; खात्—आकाश से; च्युता—गिरा हुआ।

शिशुपाल के शरीर से एक तेजोमय प्रकाशपुञ्ज उठा और सबों के देखते देखते वह भगवान् कृष्ण में उसी तरह प्रविष्ट हो गया, जिस तरह आकाश से गिरता हुआ पुच्छल तारा पृथ्वी में समा जाता है।

तात्पर्य : इस सम्बन्ध में आचार्यगण हमें स्मरण दिलाते हैं कि शिशुपाल भगवान् का ही एक नित्य-पार्षद था, जो युद्धरत असुर की भूमिका निभा रहा था। इस तरह अधिकांश दर्शकों को लगा कि शिशुपाल को भगवान् के शारीरिक तेज में लीन होने की निर्विशेष मुक्ति प्राप्त हो गई। वस्तुतः अपने मर्त्य शरीर से मुक्त होने के बाद शिशुपाल अपने स्वामी, वैकुण्ठ के अधिपति, की ओर लौट गया।

अगले श्लोक में इसकी और अधिक व्याख्या हुई है।

जन्मत्रयानुगुणितवैरसंरब्धया धिया ।

ध्यायंस्तन्मयतां यातो भावो हि भवकारणम् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

जन्म—जन्मों; त्रय—तीन; अनुगुणित—तक चलने वाली; वैर—शत्रुता; संरब्धया—अभिवृद्धि होने से; धिया—मनोवृत्ति से; ध्यायन्—ध्यान करते हुए; तत्-मयताम्—उन्से तादात्म्य; यातः—प्राप्त किया; भावः—मनोभाव; हि—निस्सन्देह; भव—पुनर्जन्म का; कारणम्—कारण।

तीन जन्मों से भगवान् कृष्ण के प्रति द्वेष में अभिवृद्धि से शिशुपाल को भगवान् का दिव्यरूप प्राप्त हुआ। दरअसल मनुष्य की चेतना से उसका भावी जन्म निश्चित होता है।

तात्पर्य : शिशुपाल तथा उसका मित्र दन्तवक्र, अध्याय ७८ में कृष्ण द्वारा जिसके वध का वर्णन होगा, पूर्वजन्म में जय तथा विजय नामक वैकुण्ठ के द्वारपाल थे। अपराध होने से चार कुमारों ने उन्हें भौतिक जगत में असुरों के रूप में तीन बार जन्म लेने का शाप दे दिया। प्रथम जन्म में वे हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु हुए, दूसरे जन्म में रावण तथा कुम्भकर्ण बने और तीसरे जन्म में शिशुपाल तथा दन्तवक्र बने। प्रत्येक जन्म में वे भगवान् के प्रति वैर-भाव में लीन रहे और उनके द्वारा मारे गये।

श्रील प्रभुपाद ने शिशुपाल की स्थिति की व्याख्या इस प्रकार की है—“यद्यपि शिशुपाल श्रीकृष्ण का शत्रु बनकर कार्य कर रहा था तथापि वह एक क्षण के लिए भी कृष्णभावनामृत से दूर नहीं था। वह सदैव श्रीकृष्ण के ध्यान में लीन रहता था। अतएव सर्वप्रथम उसे सायुज्य-मुक्ति प्राप्त हुई और अन्ततः साकार सेवा की अपनी मूल-स्थिति को फिर से प्राप्त हो सका। *भगवद्गीता* से इसकी पुष्टि होती है कि यदि मृत्यु के समय व्यक्ति परमेश्वर के ध्यान में मग्न रहता है, तो वह भौतिक शरीर त्यागने के पश्चात् तुरन्त ही भगवद्धाम में प्रवेश करता है।”

श्रीमद्भागवत के तृतीय तथा सातवें स्कन्धों में इस घटना का विस्तृत वर्णन है, जिसमें भगवान् के निजी पार्षदों को शाप मिला था कि वे उनके शत्रु बनकर भौतिक जगत में जन्म लें। इस सम्बन्ध में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने निम्नलिखित श्लोक (*भागवत* ७.१.४७) उद्धृत किया है :

वैरानुबन्धतीव्रेण ध्यानेनाच्युतसात्मताम् ।

नीतौ पुनर्हरिः पार्श्वं जग्मतुर्विष्णुपार्षदौ ॥

“भगवान् विष्णु के ये दोनों पार्षद—जय तथा विजय—दीर्घकाल तक शत्रु-भाव बनाये रहे। इस

तरह कृष्ण के विषय में सदैव ध्यान करने से उन्हें भगवद्धाम वापस जाने पर पुनः भगवान् की शरण प्राप्त हुई।”

ऋत्विग्भ्यः ससदस्येभ्यो दक्षिणां विपुलामदात् ।
सर्वान्सम्पूज्य विधिवच्चक्रेऽवभृथमेकराट् ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

ऋत्विग्भ्यः—पुरोहितों को; स-सदस्येभ्यः—सभा के सदस्यों सहित; दक्षिणाम्—दक्षिणा; विपुलाम्—प्रचुर; अदात्—दिया; सर्वान्—सबों को; सम्पूज्य—भलीभाँति पूज कर; विधि-वत्—शास्त्रीय आदेशों के अनुसार; चक्रे—सम्पन्न किया; अवभृथम्—यज्ञ के यजमान की शुद्धि के लिए स्नान तथा यज्ञ पात्रों का प्रक्षालन (यज्ञान्त-स्नान); एक-राट्—सम्राट युधिष्ठिर ।

सम्राट युधिष्ठिर ने यज्ञ के पुरोहितों को तथा सभासदों को उदार भाव से उपहार दिये और वेदों में संस्तुत विधि से उन सबका समुचित सम्मान किया। तत्पश्चात् उन्होंने अवभृथ स्नान किया।

साधयित्वा क्रतुः राज्ञः कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ।
उवास कतिचिन्मासान्सुहृद्भिरभियाचितः ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

साधयित्वा—सम्पन्न करके; क्रतुः—सोम यज्ञ; राज्ञः—राजा का; कृष्णः—कृष्ण ने; योग-ईश्वर—योगशक्ति के स्वामियों के; ईश्वरः—परम स्वामी; उवास—निवास किया; कतिचित्—कुछ; मासान्—महीनों; सु-हृद्भिः—उनके शुभचिन्तकों द्वारा; अभियाचितः—याचना किये गये।

इस प्रकार योग के समस्त ईश्वरों के स्वामी श्रीकृष्ण ने राजा युधिष्ठिर की ओर से इस महान् यज्ञ का सफल समापन करवाया। तत्पश्चात् अपने घनिष्ठ मित्रों के हार्दिक अनुरोध पर वे कुछ महीनों तक वहाँ रुके रहे।

तात्पर्य : यद्यपि भगवान् कृष्ण समस्त योगेश्वरों जैसे कि शिवजी के ईश्वर हैं फिर भी वे राजा युधिष्ठिर के शुद्ध प्रेम के वशीभूत थे। इसलिए भगवान् ने राजा के यज्ञ की सफलतापूर्वक समापन का स्वयं ध्यान रखा। तत्पश्चात् वे इन्द्रप्रस्थ में अपने प्रिय मित्रों के साथ कुछ महीने और टिके रहने के लिए राजी हो गये।

ततोऽनुज्ञाप्य राजानमनिच्छन्तमपीश्वरः ।
ययौ सभार्यः सामात्यः स्वपुरं देवकीसुतः ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; अनुज्ञाप्य—प्रस्थान के लिए अनुरोध करके; राजानम्—राजा के; अनिच्छन्तम्—न चाहते हुए; अपि—यद्यपि; ईश्वरः—भगवान्; ययौ—चले गये; स-भार्यः—अपनी पत्नियों सहित; स-अमात्यः—अपने मंत्रियों सहित; स्व—अपने; पुरम्—नगर; देवकी-सुतः—देवकी-पुत्र।

तब देवकी-पुत्र भगवान् ने, न चाहते हुए भी, राजा से अनुमति ली और वे अपनी पत्नियों तथा मंत्रियों सहित अपनी राजधानी लौट आये।

वर्णितं तदुपाख्यानं मया ते बहुविस्तरम् ।

वैकुण्ठवासिनोर्जन्म विप्रशापात्पुनः पुनः ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

वर्णितम्—बतलाये; तत्—उस; उपाख्यानम्—विवरण को; मया—मेरे द्वारा; ते—तुम्हें; बहु—अधिक; विस्तरम्—विस्तार से; वैकुण्ठ-वासिनोः—ईश्वर के नित्य धाम के दो निवासियों (जय तथा विजय नामक द्वारपालों) के; जन्म—जन्म; विप्र—ब्राह्मणों (चारों कुमारों) के; शापात्—श्राप से; पुनः पुनः—फिर फिर।

मैं पहले ही तुमसे वैकुण्ठ के उन दो वासियों का विस्तार से वर्णन कर चुका हूँ, जिन्हें ब्राह्मणों द्वारा शापित होने से भौतिक जगत में बारम्बार जन्म लेना पड़ा।

राजसूयावभृथ्येन स्नातो राजा युधिष्ठिरः ।

ब्रह्मक्षत्रसभामध्ये शुशुभे सुरराडिव ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

राजसूय—राजसूय यज्ञ के; अवभृथ्येन—अन्तिम अवभृथ्य अनुष्ठान द्वारा; स्नातः—नहाया; राजा युधिष्ठिरः—राजा युधिष्ठिर; ब्रह्म-क्षत्र—ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों की; सभा—सभा के; मध्ये—मध्य में; शुशुभे—तेजोमय लगा; सुर—देवताओं का; राट्—राजा (इन्द्र); इव—सदृश।

अन्तिम अवभृथ्य अनुष्ठान में, जो कि राजसूय यज्ञ के सफल समापन का सूचक था, पवित्र होकर राजा युधिष्ठिर एकत्र ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों के बीच इस तरह चमक रहे थे, मानो साक्षात् देवराज इन्द्र हों।

राज्ञा सभाजिताः सर्वे सुरमानवखेचराः ।

कृष्णं क्रतुं च शंसन्तः स्वधामानि ययुर्मुदा ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

राज्ञा—राजा द्वारा; सभाजिताः—सम्मानित; सर्वे—सभी; सुर—देवता; मानव—मनुष्य; खे-चराः—तथा आकाश में विचरण करने वाले (उपदेवता तथा असुर); कृष्णम्—कृष्ण को; क्रतुम्—यज्ञ को; च—तथा; शंसन्तः—प्रशंसा करते हुए; स्व—अपने अपने; धामानि—धामों को; ययुः—चले गये; मुदा—प्रसन्नतापूर्वक।

राजा द्वारा समुचित सम्मान दिये जाकर देवता, मनुष्य तथा मध्यलोक के निवासी प्रसन्नतापूर्वक कृष्ण तथा महान् यज्ञ की प्रशंसा करते हुए अपने अपने लोकों के लिए रवाना हो

गये।

तात्पर्य : श्रीधर स्वामी के अनुसार यहाँ पर खेचराः शब्द प्रमथों अर्थात् शिवजी के साथ रहने वाले योगियों का द्योतक है।

दुर्योधनमृते पापं कलिं कुरुकुलामयम् ।

यो न सेहे श्रीयं स्फीतां दृष्ट्वा पाण्डुसुतस्य ताम् ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

दुर्योधनम्—दुर्योधन को; ऋते—छोड़ कर; पापम्—पापी; कलिम्—कलियुग का शक्त्याविष्ट अंश; कुरु-कुल—कुरुवंश का; आमयम्—रोग; यः—जो; न सेहे—नहीं सहन कर सका; श्रीयम्—ऐश्वर्य को; स्फीताम्—पुष्पित-पल्लवित होते; दृष्ट्वा—देख कर; पाण्डु-सुतस्य—पाण्डु-पुत्र का; ताम्—उस।

पापी दुर्योधन को छोड़ कर (सारे लोग संतुष्ट थे), क्योंकि वह तो साक्षात् कलिकाल था और कुरुवंश का रोग था। वह पाण्डु-पुत्र के वृद्धिमान ऐश्वर्य का देखना सहन नहीं कर सका।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद लिखते हैं, “दुर्योधन स्वभाव से अत्यन्त ईर्ष्यालु था, क्योंकि उसका जीवन पापमय था और वह कुरुवंश में सम्पूर्ण वंश को नष्ट करने के लिए साक्षात् असाध्य रोग के रूप में प्रकट हुआ था।” श्रील श्रीधर स्वामी कहते हैं कि दुर्योधन शुद्ध धार्मिक सिद्धान्तों से घृणा करता था।

य इदं कीर्तयेद्विष्णोः कर्म चैद्यवधादिकम् ।

राजमोक्षं वितानं च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; इदम्—ये; कीर्तयेत्—कीर्तन करता है; विष्णोः—भगवान् विष्णु के; कर्म—कार्यकलाप; चैद्य-वध—शिशुपाल का वध; आदिकम्—इत्यादि; राज—राजाओं का (जो जरासन्ध द्वारा बन्दी बनाये गये थे); मोक्षम्—मोक्ष; वितानम्—यज्ञ; च—तथा; सर्व—सभी; पापैः—पाप के फलों से; प्रमुच्यते—मुक्त कर दिया जाता है।

जो व्यक्ति भगवान् विष्णु के इन कार्यकलापों को, जिनमें शिशुपाल वध, राजाओं का मुक्त किया जाना तथा राजसूय यज्ञ का निष्पादन सम्मिलित हैं, सुनाता है, वह समस्त पापों से छूट जाता है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत “राजसूय यज्ञ में शिशुपाल का उद्धार” नामक चौहत्तरवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।